

तुम कहाँ हो ?

(यह अतिशय हर्षका विषय है कि संमाननीय श्रीगौतमभाई पटेलके ७५वें वर्षप्रवेशके उपलक्ष्यमें एक अभिनन्दनग्रन्थ प्रकट होने जा रहा है. गौतमभाई संस्कृतविद्याके एक अनन्य उपासक और माता सरस्वतीके लाडिले पुत्र हैं. इस संस्कृतविद्याके क्षेत्रमें इनका प्रदान न केवल प्रभूत परन्तु स्पृहणीय और अभिनन्दनार्ह है. भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यके बारेमें गौतमभाई द्वारा प्रकाशित किये गये ग्रन्थपुष्प न केवल संग्रहणीय और पठनीय हैं बल्कि गवेषणापूर्ण होनेके कारण मननीय भी हैं. इनके दीर्घायुष्य स्वास्थ्य और माता सरस्वतीके आराधनार्थ इन्हें सभी तरहका सौकर्य सदा-सर्वदा उपलब्ध रहे ऐसी शुभकामनाके साथ इस निबन्ध लिखते हुवे हार्दिक सन्तोषकी अनुभूति मुझे हो रही है!)

“तुम कहाँ हो?” ऐसा सवाल कोई गृहिणी या माता अपने पति या सन्तति से जो पूछती हो तो “ऑफिसमें ही हूँ” या “स्कूलमें ही हूँ” ऐसा जवाब हमारी अपेक्षाके अनुरूप ही लगेगा. पर बाहरगामसे कोई परिचित ऐसा सवाल करता हो तो “अभी मुंबई या अमदावाद में हूँ” ऐसे जवाबकी अपेक्षा रखी जा सकती है. कोई विश्वभ्रमणार्थ यात्रा कर रहा हो तब ‘कहाँ?’ सवालके जवाबके रूपमें यु.एस.ए. स्वीट्ज़र्लैंड या न्यूजीलैंड आदि देशोंका उल्लेख प्रासंगिक लगेगा. अभी तक अन्तर्ग्रहपरिभ्रमणका युग शुरु हुवा नहीं है, अन्यथा चंद्रमा मंगल; या गुरुके उपग्रह यूरोपा आदि भी, हमारी अपेक्षाको सन्तुष्ट करनेवाले क्यों नहीं बन पायेंगे!

सामान्य मानव, परन्तु, ऐसे सवाल-जवाबमें उलझ नहीं पाता है. अतः “तुम कहाँ हो?” ऐसे सवालके जवाबमें कोई “हालमें तो युनिवर्स या ब्रह्मांड में हूँ!” ऐसा कोई जवाब दे-दे तो अवश्य ही विस्मयजनक लगेगा या नहीं! मानों कि ब्रह्मांडमें होना हमारा शक्य ही न हो. अर्थात् यदि कहीं हम हो सकते हों तो वह कोई देश, कोई नगर, या किसी कार्यस्थल में ही!

एक हकीकत, परन्तु, यह भी है कि ऐसा विचार तो दार्शनिकों या वैज्ञानिकों के ही मनमें कौंधता होता है. क्योंकि मानवदृष्टि द्वारा गोचर या अगोचर ऐसी बुद्धिपरिकल्पित शुद्ध समग्रताको ‘युनिवर्स’ या ‘ब्रह्मांड’ ऐसा नामाभिधान तो दार्शनिक या वैज्ञानिक ही करते हैं.

यद्यपि युरोपके प्राचीन चिन्तकोंके मनमें ‘कॉस्मिक् एग’, ब्रह्मांड*के पर्यायवाचक, जैसी धारणा कदाचित् थी नहीं. विज्ञानकी कॉस्मोलोजीकी नई वैकल्पिक तीन-चार धारणाओंमें से एक धारणा महाविस्फोट (The big bang theory) की प्रक्रिया अभिप्रेत है. इस प्रक्रियाके अनुसार सृष्टिजनक ऐसा महाविस्फोट उस कॉस्मिक-एगमें हुवा था ऐसा माना जाता है. हमारी भाषाके ‘ब्रह्मांड’ शब्दकी तुलनामें आनेवाला यह शब्दपर्याय है. इसमें प्रयुक्त ‘कॉस्मिक्’ विशेषण ‘कॉस्मोस्’ शब्दसे व्युत्पन्न हुवा है और उसका अर्थ कोशकार "The universe regarded as an orderly, harmonious whole" (रीडर्स डाइजेस्ट ग्रेट इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी) करते हैं. क्योंकि पुरातन यूनानी चिन्तक ‘कॉस्मोस्’ पदका प्रयोग ऑर्डर और विश्व के अर्थोंमें करते थे.

*द्रष्ट. : “तदा संहत्य च अन्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः सदसत्त्वम् उपादाय च उभयं ससृजुः... वर्षपूगसहस्रान्ते तद् अण्डं... कालकर्मस्वभावस्थो जीवो अजीवम् अजीवयत्. स एव पुरुषः तस्माद् अण्डं निर्भिद्य निर्गतः” (भाग.पुरा.२।५।३३-३५).

हमारे वैदिक साहित्यमें “एतावान् अस्य महिमा अतो ज्यायाँश्च पूरुषः. पादो अस्य इह भूतानि त्रिपादस्य अमृतं दिवि. त्रिपाद् ऊर्ध्वम् उदैत् पुरुषः. पादो अस्य इह अभवत् पुनः. ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशानानशने अभि. तस्माद् विराड् अजायत”. (ऋक्संहि.१०।१०।१७) अर्थात् दृष्टिगोचर होता यह सारा विस्तार उस चतुष्पाद विराट् पुरुषकी विराटता या महिमा है. वह स्वयं तो इससे कहीं अधिक है. क्योंकि उसके चारमें से एक पादके अन्तर्गत यह सारे भूत-भौतिक पदार्थ रहते हैं. तीन पाद तो इन्द्रियागोचर द्युलोकमें होते हैं. अतः अपने अवशिष्ट तीन पादोंके साथ वह स्वयं दृश्य प्रपंचसे अतीत ही रहता है. उसके केवल एक पादसे यह समग्र विश्व व्युच्चरित हुआ है, चाहे अन्नोपजीवी हो या निरन्न विद्यमान रह पानेवाले द्रव्य. उस ऐसे पुरुषमें से विराट् प्रादुर्भूत हुआ.

इस श्रुतिवचनमें प्रतिपादित विराट्को ब्रह्मांडके आधिदैविक पर्यायरूपेण माना जा सकता है.

श्रीयास्कमुनि-विरचित निघण्टुनिरुक्तभाष्यमें यद्यपि ‘ब्रह्मांड’ शब्द संकलित हो नहीं पाया है, अतः वेदोंकी संहिता ब्राह्मण आरण्यक या प्रमुख उपनिषदों में भी कहीं ‘ब्रह्मांड’ पदका प्रयोग हुआ है या नहीं हुआ, यह तो गवेषणीय विषय लगता है. फिरभी इसके पर्यायके रूपमें प्रयोगार्ह एक ‘विराज्’ शब्द तो वहां भी उपलब्ध होता ही है. निरुक्तमें, यद्यपि, छन्दके अन्यतम प्रकारके अभिधानतया प्रयुक्त हुआ है, फिरभी पदव्युत्पत्तिका विचार करनेपर ‘ब्रह्मांड’के पर्यायतया स्वीकारनेमें आपत्तिजनक कुछ नहीं लगता. क्योंकि वहां “विराजनात् सम्पूर्णाक्षरा” (निरु.७।३।१३।१९)की व्याख्या करते हुवे श्रीदुर्गाचार्य कहते हैं “साकल्याद् विराजतइवेति विराजनाद् ‘विराट्’” अर्थात् साकल्य (wholeness) को पदप्रवृत्तिनिमित्तके रूपमें स्वीकारा गया है.

इसीका वर्णन बृहदारण्यकोपनिषद्के “नैव इह किञ्चन अग्रे आसीद्.

मृत्युनैव इदम् आवृतम् आसीद्, अशनायया. अशनाया हि मृत्युः. तद् मनो अकुरुत आत्मन्वी स्याम् इति” (बृह.उप.१।१।१९) अर्थात् पहले यहां कुछ भी नहीं था. सभी कुछ विगत कल्पकी मृत्यु/अन्तर्भुक्तावस्थासे ग्रस्त था. क्योंकि अशनाया* पूर्वकल्पमें व्यक्तद्रव्यरूपा सृष्टिकी अपने लयाधारभूत तत्त्वमें प्रलीनता या अन्तर्भुक्तता है. उस लयाधारमें पुनः प्रकट होनेवाली सृष्टिके प्रादुर्भावानुकूल शक्तिरूपेण यहां अवस्थिति समझानी चाहिए है. उस शक्तिका पुनः द्रव्यभावापन्न होना ही यहां ‘आत्मन्वी’ पदके प्रयोगद्वारा ध्वनित किया गया है. और इसी हेतुवश प्रकट होनेसे पूर्व सृष्टिका एकान्तिक अभाव मान्य नहीं हो पाता. पूर्वसृष्टिके स्वरूपेण या आत्मना किसी अन्य आधारभूत तत्त्वमें अन्तर्भुक्त होनेके कारण उसका स्वयंका कोई विशेष स्वरूप या आत्मरूप नहीं बच गया था. अपनी निजात्मरूपरहित अन्तर्भुक्तावस्थामेंसे पृथक् स्वरूपमें प्रकट होनेको जब सूक्ष्मरूपा सृष्टि स्पन्दित होने लगी तब उसमें जगी आत्मन्वी होनेकी अभिवृत्ति अपने लयाधारसे पृथक् रूपधारण हेतु अभिवृत्तिके रूपमें सोची जा सकती है. अतएव इस वचनमें इदमास्पद विश्व प्रकट होनेसे पूर्व ऐसे किसी प्रकारकी अशनाया अर्थात् किसी ऐसे तत्त्वमें अन्तर्भुक्ति या भक्षित होनेकी अवस्थामें था. उस अन्तर्भुक्त तत्त्वके भीतरसे बाहर आ कर दोबारा आत्मन्वी होनेकी अर्थात् अन्तर्लीन अवस्थासे प्रकट होनेकी वृत्ति या स्पन्दन जैसा कुछ घटित हुआ दिखलाया जा रहा है. अर्थात् एकीभूत अवस्थामेंसे अनेकीभावापन्न होनेके स्पन्दनकी ओर संकेत किया जा रहा है. यों इस सृष्टिका क्रमिक चक्रमें पुनरांभ हुआ.

ब्रह्मांडके प्रकट होनेसे पहले उसके कहीं अन्तर्लीन होनेकी अवस्थाको

*द्रष्ट. : तुलनीय : ""ANTIMATTER-each particle of matter has a corresponding anti-particle. If they meet, they annihilate each other, leaving pure energy" THE GRAND DESIGN by Stephen Hawking ppp.183).

मनुस्मृतिकार 'मृत्यु' या 'भक्षित' होनेके कठोर शब्दमें निरूपित करनेके बजाय “न असद् आसीद् नो सद् आसीत्...तमः आसीत् तमसा गूढम्” (ऋक्संहि.१०।११।१२९।१-३) ऋचाका अवलंबनकर सुषुप्ति या तमस् अवस्थाके रूपमें निरूपित करना चाहते हैं : “आसीद् इदं तमोभूतम् अप्रज्ञातम् अलक्षणम् अप्रतर्क्यम् अविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः. ततः स्वयम्भुः भगवान् अव्यक्तो... तमोनुदः... सो अभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुः... तद् अण्डम् अभवत् सहस्रांशुसमप्रभम्. तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः... द्विधा भित्त्वा आत्मनो देहम्... विराजम् असृजत् प्रभुः” (मनुस्मृ.१।५-३२) अर्थात् यह पहले तमोभूत अप्रज्ञात किसी भी तरहके विशेष गुणोंके आधारपर परिभाषित न हो पानेवाला, अतएव अप्रतर्क्य, अतएव अविज्ञेय, अर्थात् प्रसुप्त होने जैसी किसी अवस्थामें था. बादमें उस तम या सुषुप्ति का अपहरण करनेवाले स्वयम्भू अव्यक्त भगवान् प्रकट हुवे. ऐसे उस भगवान्के शरीरमेंसे सहस्रांशु सूर्योपम अण्ड प्रकट हुवा. उसके भीतर सर्वलोकपितामह ब्रह्मा प्रकटे. ब्रह्माने अपने अपने शरीरको द्विधा विभक्त कर विराट्को सिरजा.

आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानको अभिमत ब्लेकहोल जैसी किसी अवस्थाका यहां निरूपण प्रतीत होता है. यह अधोनिर्दिष्ट प्रतिपादनके साथ तुलना करनेपर समझा जा सकता है :

""The star collapses under the pull of its gravity until nothing, not even light, can escape. It becomes a black hole... astronomers believe, of material being compressed and heated before it is sucked in".

(रीडर्स डाइजेस्ट् ग्रेट इलस्ट्रेटेड् डिक्शनरी पृ.१८८).

इस तरह मनुस्मृतिमें सृष्टिकी उसके लयाधारमें अन्तर्भुक्तावस्थाको सुषुप्ति और तमस् के रूपमें किञ्चित् क्रमान्तरपूर्वक वर्णित किया

गया है. महाभारतमें तो 'ब्रह्मांड' पदका प्रयोग कण्ठतः कई स्थलोंमें उपलब्ध होता ही है. इसी तरह ब्रह्मांडपुराणमें भी “अण्डं हिरण्यं चैव ब्रह्मणः सृतिः उत्तमा” (ब्रह्मा.पुरा.१।१।१) ऐसा कह कर उस ब्रह्मांडकी सुषुप्तावस्थाको ब्राह्मिकी अवस्थाके रूपमें प्रस्थापित किया गया है-

“अव्यक्तं कारणं यत् तत् नित्यं सदसदात्मकं प्रधानं प्रकृतिं चैव यम् आहुः तत्त्वचिन्तकाः... जगद्योनिं महाभूतं परं ब्रह्म सनातनं विग्रहं सर्वभूतानाम् अव्यक्तम्... अनाद्यन्तम् अजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाप्ययम् असाम्प्रतिकम् अज्ञेयं ब्रह्म यत् सदसत्परं, तस्य आत्मना सर्वम् इदं व्याप्तम् आसीत् तमोमयम्... बृहत्त्वाद् बृंहणत्वात् च भावानाम् अखिलाश्रयाद् यस्माद् बृंहयते भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते... बुध्यते पुरुषः च अत्र सर्वान् भावान् पृथक्-पृथक् तस्मिन्तु कार्यकरणं संसिद्धं ब्रह्मणः पुरा... सवै शरीरी प्रथमः पुरा 'पुरुषः' उच्यते. आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्मा अग्रे समवर्तिनां हिरण्यगर्भः सो अण्डे अस्मिन् प्रादुर्भूतः चतुर्मुखः, सर्गे च प्रतिसर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंमितः”.

(ब्रह्मा.पुरा.१।२।८-२६)

ब्रह्मांडपुराणकी इस प्रतिपादनशैलीमें सुषुप्ति या तमोऽवस्था में ब्रह्माण्डके पुनर्धनीभावकी प्रक्रिया ध्वनित हो रही है. उसके साथ उसके सर्ग और प्रतिसर्ग के भी उल्लेखके कारण, आधुनिक 'द बिगबैंग थियरी'की जगह 'दी ऑस्सिलेटिंग युनिवर्स थियरी' के साथ यह प्रक्रिया प्रत्यासन्नतर लगती है. धैर्यपूर्वक, यदि कुछ विचारा जाये तो, 'बिगबैंग'प्रक्रियाके अन्तर्गत 'ऑस्सिलेशन' होना आवश्यक नहीं परन्तु ऑस्सिलेशनकी प्रक्रियाके अन्तर्गत पुनः-पुनःसर्ग किसी प्रकारके बिगबैंगके साथ क्यों नहीं हो सकता? इसके अलावा यह ब्रह्माण्ड अखिल भावोंका आश्रयभूत है,ऐसा प्रतिपादन भगवद्गीताके ग्यारहमें अध्याय, नामशः, 'विश्वरूपदर्शनयोग'

के वर्णनके साथ अधिक सुसंगत लगता है. अतएव ब्रह्माण्डमूर्ति नारायण और विराट् पुरुष के वर्णन एकदूजेके साथ पर्याप्त संनिकट प्रतिपादन लगते हैं.

बिगबैंग् जैसी विविध प्रक्रिया या थियरी को ध्यानमें रखनेपर आधुनिक विज्ञानचिन्तक, उदा. 'द ग्रेण्ड डिज़ाइन' के लेखक स्टीफेन हॉकिंग् कहते हैं:

"Strict realists often argue that the proof, that scientific theories represent reality, lies in their success. But different theories can successfully describe the same phenominon through disparate conceptual framework."

(पृ.सं.४४ वहीं)

अतः लगता है कि अब विज्ञानके आधुनिक चिन्तनके अनुसार कॉस्मोसके भीतर ही कहीं कुछ केओस् जैसा अन्तर्निहित है और उसी तरह ऐसे केओटिक युनिवर्सके भीतर भी कहीं एक कॉस्मोस् भी अन्तर्निहित है. उसे प्रस्तुत करनेवाली कोई न कोई ऑर्डरलीनेस उन-उन थियरिओंके अनुसार मिल जाती हैं और अनुभवपथमें भी आती ही हैं.

हमारे देशके दो वेदान्त-चिन्तनोंमेंसे एक चिन्तन अपारमार्थिक-मायिक-द्वैतवादको अन्तर्गर्भित रख कर पारमार्थिक ब्रह्माद्वैतवादके रूपमें भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यने प्रस्तावित किया. इस चिन्तनरीतिके अनुसार विश्वके बारेमें मानवमतिको उलझानेवाले प्रश्नोंका समाधान सदसद्विलक्षण अघटितघटना - पटीयसी माया या अविद्या के रूपमें खोजा गया है. जबकि पारमार्थिक लीलात्मक द्वैतवादको अन्तर्गर्भित रख कर पारमार्थिक ब्रह्मादात्म्यवादके

पुरस्कर्ता महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ ऐसे परब्रह्म परमात्मा भगवान्की लीलाके रूपमें उसे अनुप्रस्थापित करना चाहते हैं. अतः इन दोनों मतोंके अनुसार सृष्टिप्रक्रियाकी व्याख्यामें इदमित्थंरूपेण कोई एक निश्चित प्रतिपादनशैलीमें बंधनेकी अनिवार्यता रह नहीं जाती है. अतएव मायावादाभिमत सृष्टिके बहुविध प्रकारोंके बारेमें सिद्धान्तलेशसंग्रहकार कहते हैं "प्राचीनैः व्यवहारसिद्धविषयेषु आत्म्यैक्यसिद्धौ परां संनह्यद्भिः अनादरात् सरणयो नानाविधा दर्शिताः" (सि.ले.सं.२). उसी तरह महाप्रभु श्रीवल्लभ कहते हैं :

“एवं कदाचिद् भगवान् साक्षात् सर्वं करोति अजः,
कदाचित् पुरुषद्वारा कदाचित् पुनः अन्यथा कदाचित् सर्वम्
आत्मैव भवति इह जनार्दनः. महेन्द्रजालवत् सर्वं कदाचिद्
मायया असृजत् तदा ज्ञानादयः सर्वे वार्तामात्रं न वस्तुतः,
वियदादि जगत् सृष्ट्वा तदाविश्य द्विरूपतो जीवान्तर्यामिरूपेण
क्रीडति स्म हरिः क्वचिद्. अचिक्त्यानन्तशक्तेः तद् यदेतद्
उपपद्यते अतएव श्रुतौ भेदाः सृष्टेः उक्ताः हि अनेकधा”

(त.दी.नि.१।३६-४०).

दार्शनिकोंकी ऐसी रहस्यवादी वाणीके लिये आधुनिक विज्ञानके शैशवकालमें, ऐसी वाणीमें श्रद्धा न रखनेवालोंने, बड़ा बावेल मचाया था. उपेक्षा अस्वीकार से आरंभ कर उपहास पर्यन्त प्रतिक्रिया कुछ दशाब्दियोंके पहले प्रकट की जाती थी. अभी भी आधुनिकविज्ञानको वैज्ञानिक मनोवृत्तिके बजाय श्रद्धातिरेकसे सुनने-माननेवाले लोग बहुधा उपहास करते रहते हैं. विज्ञान, परन्तु, अब स्वयं ही ऐसी वाणीमें मुखरित होने लगा है :

1. "After seeing physicists frustrated trying to solve this problem directly... This was Feynman's trade-mark : not powerful

mathematics, but powerful imagination, combined with physical understanding".

2. "Model-dependent realism Short-circuit all this argument and discussion between the realist and anti-realist schools of thought. According to model-dependent realism, it is pointless to ask whether a model is real, only whether it agrees with observation".

(^१.लियोनार्ड म्लोदिनोवलिखित फैनमेन्स् रैनबो पृ.६१, स्टीफेन् हॉकिंग लिखित द ग्रेण्ड डिज़ाइन पृ.४४-४५).

आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञान भी अब गणितशास्त्रीय इदमित्थंभावेन नहीं प्रत्युत ऊहापोहात्मिका कल्पनाओंके आधारपर ही तथा अपने अन्वेषणका एक वैचारिक मोडेल बना ब्रह्मांडको निरखने-परखनेकी बातें करने लगा है. ऐसी ही वाणीमें 'युनिवर्स' कहो या 'कॉस्मोस' कहो उसे निःसंकोच स्वीकारने भी लगा है. आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानकी ब्रह्मांडमीमांसा प्राचीन धर्म और दर्शन से इस दिशामें अग्रसरताको निहारना हो तो उल्लिखित 'द ग्रेण्ड डिज़ाइन' के लेखक स्टीफेन् हॉकिंग जो सुस्पष्ट शब्दोंमें कह रहे हैं वह देख लेना चाहिये:

"...like particle, the universe doesn't have just a single history, each with its own probability; and our observations of its current state affect its past and determine the different histories of the universe, just as the past observations of the particles..."

(वहीं पृ.८३).

अतः अब आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञान भी ब्रह्मांडके बारेमें दार्शनिक अनिश्चित प्रतिपादनशैलीके याथार्थ्यके प्रति अपनी उपेक्षा अस्वीकृति या उपहास की मनोवृत्तिको संयत कर पाया है. फलरूपेण ब्रह्मांडमीमांसामें निरत मानवमतिके इन चिरवृद्ध धर्म-दर्शनविभाग और नूतन यौवनोत्साहसे परिपूर्ण आधुनिकविज्ञान के विभागोंमें अब परस्पर संवाद उतना दुष्कर नहीं रह जाना चाहिये. पहले कभी कैशौर्योन्मादवश जैसा मान लिया गया था !

आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञान युनिवर्स या कॉस्मोस् को "The universe regarded as an orderly, harmonious whole" के रूपमें ही स्वीकारता हो ऐसा भी कह नहीं सकते. क्योंकि स्टीफेन् हॉकिंगके अनुसार तो द्रव्यकी चतुर्विध शक्तिओंमें निर्बलतम गुरुत्वाकर्षणशक्ति, द्रव्यकी प्रबलशक्तिओंमें एकतर विद्युच्चुम्बकीय शक्ति, परमाणुनाभिकगत दुर्बलशक्ति जो ब्रह्मांडकी आरम्भिक अवस्थामें द्रव्यसंघातके निर्माणमें प्रमुखहेतुतया अभिमत है; तथा परमाणुनाभिकगत प्रबलतमा शक्ति यह प्रोटोन और न्यूट्रोन को अन्योन्यधारण करनेमें और उन्हें परमाणुके नाभिप्रदेशमें धारण करनेमें हेतुभूता मानी जाती है. इन चारों शक्तिओंके एकीकरणकी (GUT) प्रक्रियामें भी एकाधिक प्रकार मान लेने उद्यत हैं (तत्रैव पृ.११०).

अतः ब्रह्मांड भी एक है या अनेक यह भी मीमांस्य विषय बन गया है. हमारा वैदिक साहित्य ब्रह्मांडनिरूपणमें ब्रह्मके एकत्व या एकमेवाद्वितीयत्व का व्रती होनेके कारण आरम्भसे ही ब्रह्मांडैक्यवादके प्रति बहोत लगाव रख नहीं पाया.

इस मुद्देको छूनेसे पहले वेदों और उसके प्रतियोगी चिन्तनों के हिसाबसे जो सृष्टिप्रक्रिया वर्णित हुयी है, उनकी ओर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है.

तीन-चार धारणा प्रस्तुत करता है उनका अवलोकन कर लेना चाहिये.

सृष्टिके बारेमें, श्वरवादी और अनीश्वरवादी धर्मोंद्वारा, प्रायः तीन प्रकारकी धारणायें प्रस्तुत हुयी हैं :

^१आदिमान्तिमसर्गादिवाद

^२सर्गनैरन्तर्यवाद

^३अ-सर्गवाद

^१इस धारणाके अनुसार यह विश्व परमेश्वर द्वारा निर्मित आदिम और अन्तिम सर्ग है. अर्थात् न तो इससे पहले कभी कोई सर्ग था और न इसके उपसंहरणके बाद कोई सर्ग होनेवाला है. अब्राहमिक, नामशः, यहूदी साइ और इस्लाम धर्मोंकी परमेश्वरनिर्मित विश्वके सर्गके बारेमें ऐसी कुछ लोकप्रचलित धारणा है. ^२जो चिन्तक किसी परमेश्वरको जगत्सृष्टाके रूपमें मान्य नहीं रखना चाहते हैं, जैसे कि बौद्ध जैन कौमारिल आदि चिन्तक. उनके मतोंके अनुसार विश्वका सृजन न तो किसी एक निश्चित कालमें हुवा है और न किसी एक किसी निर्माता व्यक्तिके द्वारा यह विश्व निर्मित है. विश्व तो एक ऐसे निजोपादानरूप तत्त्वोंसे निर्मित है जो स्वतएव उत्पन्न और विनष्ट होते रहते हैं. ^३किसी भी उत्पत्तिशील पदार्थको स्वतः या परतः देश-कालविशेषमें उत्पन्न होनेकी आवश्यकता रह नहीं जाती, और जो पदार्थ स्वयं उत्पत्तिशील न हो उसे कोई उत्पन्न कर नहीं सकता है. अतः इस विश्वका वस्तुतः सृजन हुवा नहीं है फिरभी अपनी क्षुद्रमतिके वश उत्पत्ति-विनाशकी भ्रमणा हमें अवश्य सताती है. ऐसा मतवाद मूलमें शून्यवादी बौद्धों और बौद्धोंके बाद श्रीगोडपादाचार्य और भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य जैसे समर्थ समर्थकोंद्वारा भारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है.

यों ब्रह्मांडसर्गके बारेमें श्वरवादी और अनीश्वरवादी धर्मों द्वारा प्रस्तावित तीन धारणाओंकी तरह आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञान भी जैसी

^१द बिगबैंग् थियरी

^२द ऑस्सिलेटिंग्/पल्सेटिंग् युनिवर्स थियरी

^३द स्टडी स्टेट् थियरी

अथवा तो

कन्टीन्यूअस् एक्स्पांडिंग् युनिवर्स थियरी

^४द स्ट्रिंग् थियरी.

^१इस थियरीके अनुसार आजसे करीब १३.७ खरब वर्षपूर्व अधुना दृश्य ब्रह्मांड केवल कुछ मिलिमिटर विस्तीर्ण पर अतीव सघन था. अपना भार न सम्हाल पानेके तथा अत्यधिक उष्णताके कारण वह फट कर इतना विस्तीर्ण हो गया. अतः अब इसका तापमान उतना उष्ण नहीं रह गया. फिरभी इसकी पूर्वकालिक अवस्थाको पृष्ठभागगत ब्रह्मांडीय माइक्रोवेव ऊर्जाके विकरणके रूपमें निहारा जा सकता है. यह कॉस्मिक एग् स्वयंका भार झील न पानेके कारण केन्द्रसे ही फट पड़ा और उस विस्फोटके कारण उसमेंसे जो द्रव्य प्रकट हुवे उन्हींसे यह ब्रह्मांड निर्मित है. अतः अब नया कुछ भी इसमें उत्पन्न नहीं हो रहा है. ^२इस थियरीके अनुसार यह ब्रह्मांड संकोच-विकासशील होनेके कारण निरन्तर अपने केन्द्रकी ओर गुरुत्वाकर्षणशक्तिके वश घनीभूत होता रहता है और फिर फूट भी पड़ता है. और तब पदार्थ केन्द्रसे विपरीत चारों दिशाओंमें छितराने लगते हैं. बादमें शनैःशनैः जैसे वेग घटता जाता है, वैसे-वैसे केन्द्रापकृष्ट पदार्थ पुनः जब केन्द्रापकृष्ट होने लगते हैं तब पुनः केन्द्रकी ओर सिकुड़ने शुरु करते हैं. अतः ब्रह्मांडघटक द्रव्य न तो कभी उत्पन्न होते हैं और न कभी विनष्ट ही. फिरभी पुनः-पुनः संयोजित और वियोजित केवल होते रहते हैं. यों नित्य स्पन्दनशील यह ब्रह्मांड है. ^३इस थियरीके अनुसार समष्टिरूपेण यह ब्रह्मांड न तो कभी उत्पन्न हुवा और न कभी नष्ट होगा किन्तु

व्यष्टिरूपेण इसमें द्रव्य निरन्तर उत्पन्न होता रहता है. और वह फैलता जाता होनेसे जो फैलनेके कारण शून्यावकाश जो पैदा होता है वह नूतन उत्पन्न द्रव्यसे भरता जाता है. यह निरन्तर चलती प्रक्रिया होनेके कारण किसी तरहके महाविस्फोटकी आवश्यकता नहीं है. क्योंकि इस ब्रह्मांडमें केन्द्रस्थानीय कुछ भी नहीं है. *इस अन्तिम थियरीके अनुसार यह ब्रह्मांड अपने आतान-वितानात्मक तन्तुओंमें होते विविध स्पन्दनोंकी विविधरूपता प्रकट करता है. इन ब्रह्मांडघटक तन्तुओंमें लंबाई तो होती है परन्तु ऊंचाई या चौड़ाई कुछ भी नहीं होती. अतः इन ब्रह्मांडतन्तुओंमें प्रकट होते विविध स्पन्दनोंकी ही ब्रह्मांडघटक पदार्थोंके गुणधर्मोंके प्रभेदके हेतु बनते हैं (द्रष्ट. : लिओनार्द म्लोदिनोवकी 'फेइनमैएन्स् रैनबाँ' पृ.७०).

इस तरह एक ब्रह्मांडके बारेमें ऐसी अनेकविध धारणाओंमें एकवाक्यता सिद्ध न हो पाती हो; अथवा सभी धारणाओंको विभिन्न दृष्टिकोणोंसे निहारनेपर सभी सच्ची लगती हों, तत्तद्-दृष्टि-सापेक्षतया. परन्तु इन विविध मान्यताओंके रहते अपने वेदोंकी इस बारेमें क्या धारणा है उसकी मीमांसा करनेसे पहले दो बातें लक्ष्यमें रखने लायक लगती हैं. प्रथम तो यह कि हमारा वैदिक साहित्य दृश्यमान एकत्व या अनेकत्व के बारेमें यूनानके प्रसिद्ध दार्शनिक एरीस्टोटलके लॉज् ऑफ् थोट्स् 'एकत्मतानियम' 'अव्याघातनियम' 'मध्यकोटिपरिहारनियम' को मान्य नहीं रखता है -

“एकएव अग्निः बहुधा समिद्धः, एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः,
एकैव उषाः सर्वम् इदं विभाति, एकं वा इदं वि बभूव सर्वम्”.

“अजायमानो बहुधा विजायते”.

“त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म... ब्रह्म एतद्धि सर्वाणि नामानि...
सर्वाणि रूपाणि... सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति. तदेतत् त्रयं सद्

एकम् अयम् आत्मा, आत्मो एकः सन् एतत् त्रयम्”.

“सदेव, सौम्य !, इदम् अग्रे आसीद् एकमेवाद्वितीयं... तद् ऐक्षत
बहु स्यां प्रजायेय”.

““एतदात्म्यम् इदं सर्वं तत् सत्यम्”.

('ऋक्संहि.८।५८।१०।२, 'यजुस्संहि.३१।१६, 'बृह.उप.१।६।१-
३, 'छान्दो.उप.६।२।१-३, 'छान्दो.उप.६।६।७).

अतः जो एक हो वह अनेक नहीं हो सकता; अथवा तो जो अजायमान हो वह विजायमान हो नहीं सकता; अथवा तो भेद और अभेद के बीच, न भेद या न अभेद, ऐसा कुछ भी हो नहीं सकता, ऐसे तर्कनियमोंमें ब्रह्मप्रतिपादक वेदोपनिषद् बंधना नहीं चाहते हैं. क्योंकि दृश्यमान सकल यदि सत्यके साथ एतदात्मक हो तो उसे न भेद माना जा सकता है और न अभेद ही. यद्यपि उत्तरकालीन वेदान्तके विविध विविध सम्प्रदायोंके बीच द्वैत परमार्थ है या अद्वैत परमार्थ का मुद्दा प्रमुख एवं प्रखर विवादभूमि बन गया. पर वेदोपनिषद्के लिये तो -

““पुरुषएव इदं सर्वं, यद् भूतं यच्च भव्यम्, उत अमृतत्वस्य शानो
यद् अन्नेन अतिरोहति. एतावान् अस्य महिमा अतो ज्यायाँश्च
पूरुषः”

““सो अकामयत 'बहु स्यां प्रजायेय' इति... इदं सर्वम् असृजत
यद् इदं किञ्च : सच्च त्यच्च अभवत्, निरुक्तञ्च अनिरुक्तञ्च,
निलयनञ्च अनिलयनञ्च, विज्ञानञ्च अविज्ञानञ्च, सत्यञ्च अनृतञ्च
सत्यम् अभवत्”.

““सर्वं खलु इदं ब्रह्म”.

('ऋक्संहि.१०।१०।१७, '२।६, 'छान्दो.उप.३।१४।१).

प्रकट-अप्रकट, वाच्य-अवाच्य, साधार-निराधार, विज्ञान-अविज्ञान

और सत्य-अनृत सभी कुछ एकमेव अद्वितीय परमतत्त्वके द्वारा लिये गये विविध रूप होनेसे, द्वैत परमार्थ है या अद्वैत परमार्थ है? इसका झगड़ा वेदोपनिषदोंके लिये गम्भीर परामर्श करने लायक बात दीखती नहीं है.

इस स्पष्टीकरणके बाद अब यह सुखेन विचारा जा सकता है कि आधुनिक विज्ञानचिन्तकोंका जैसा कहना है कि किसी भी एक थियरीकी चौखटमें ब्रह्मांडके इतिहासको बांधा नहीं जा सकता, उस बारेमें अपना दृष्टिकोण क्या होना चाहिये? तदर्थ प्रवृत्त होनेपर सर्वप्रथम श्वेताश्वतरोपनिषद्द्वारा की गयी एक महत्त्वपूर्ण तथ्यकी घोषणा सुन लेनी चाहिये :

“कालः स्वभावः नियतिः यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुषः
इति चिक्त्वाः. संयोगः एषां नतु आत्मभावाद् आत्मापि अनीशः
सुखदुःखहेतोः. ते ध्यानयोगानुगताः अपश्यन् देवात्मशक्तिं
स्वगुणैः निगूढां, यः कारणानि निखिलानि तानि
कालात्मयुक्तानि अधितिष्ठति एकः”.

(श्वेता.उप.१।२).

इनमें परिगणित संभाव्य ब्रह्मांडके कारणीभूत तत्त्वोंमें जिसे जो स्वीकार कर ब्रह्मांडकी व्याख्या करनी हो वह वैसी कर सकता है क्योंकि वे सभी रूप ब्रह्मके हो सकते हैं. अतएव महाप्रभु वल्लभाचार्य कहते हैं :

“श्रुत्यादिभेदेषु नानाप्रकारेण प्रतिपादितत्वाद्
अन्योन्यविरोधाद् न किञ्चित् प्रमाणं ब्रह्मणि भविष्यति इति
आशङ्क्य आह ‘सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तत्’ वस्तुतः
श्रुतौ नानावाक्यानाम् एकवाक्ययता निरूपिता, सर्वभवनसामर्थ्येन
विरुद्धधर्माश्रयत्वात्...एकै को वादो ब्रह्मणः

एकैकधर्मप्रतिपादकवाक्यशेषइति भगवान् तान् सर्वानेव
अनुसरति”.

(त.दी.नि.१।७०).

अर्थात् श्रुति-स्मृति-पुराण-तन्त्रागमोंमें नाना प्रकार सृष्टिकी उत्पत्ति आदि प्रतिपादित मिलते हैं. अन्योन्यविरुद्ध जाते इन निरूपणोंमें कोई प्रामाणिक हो नहीं सकता ऐसा लगता है. समाधान, परन्तु, यह है कि ब्रह्म किसीभी वादकी चौखट फिट न बैठनेवाला और सभी वादोंके अनुरूप स्वरूप धारण करने समर्थ विरुद्धधर्माश्रय तत्त्व होनेसे किसी भी वादको सहसा अप्रामाणिक मान लेनेकी आवश्यकता नहीं है. प्रत्येक वाद ब्रह्मके ही किसी पक्षविशेषका आंशिक प्रतिपादक माना जा सकता है. इस आधारभूत स्पष्टीकरणको देख लेनेपर ब्रह्मांड एक है या अनेक यह विचार करने जायें तो उसके विस्तारके बारेमें भी दिशानिर्देश आवश्यक लगता है.

हमारा सौरमण्डल जिस आकाशगंगा या निहारिका की बाह्यपरिधिमें अवस्थित है, उसमें यह दृश्यमान सूर्य सर्वथा एक नगण्य तारा है. ऐसी तो अनेकानेक गेलेक्सीओंको एक-एक ब्रह्मांड मानें तो इस बारेमें किसी तरहके विचारको अवकाश नहीं रह जाता. जैसाकि लाइफ नेचुर लायब्रेरी द्वारा प्रकाशित ‘द युनिवर्स’ के लेखक डेविड बर्गामिनि कहते हैं कि एक अरब से ज्यादा संख्यामें गेलेक्सी तो सिर्फ मानवनिर्मित टेलीस्कोपसे दिखलायी देती हैं. अतः दिखलायी न देनेवाली तो न जाने कितनी गेलेक्सी होंगी! परन्तु जैसा अपने सौरमण्डलके सदस्य पृथ्वी आदि ग्रहोंका एक एक परिवार है, वैसा इन एक अरब अथवा तो एक हजार अरब गेलेक्सीओंका भी कोई परिवार न हो ऐसे पता कैसे लगाना! इस बारेमें निर्णायक मत अभी आधुनिकविज्ञान भी दे कहां पाया है? किसी सूरतमें असंख्य गेलेक्सीओंका पुनः

कोई एक महा परिवार हो या न हो इसके निर्णयके बिना इनके केन्द्रका भी पता चल पाना कठिन समस्या है. इस विषयमें जो भी कुछ वास्तविकता हो ऐसा केन्द्र यदि हो तो उन गेलेक्सीओंको पुनः एक महाब्रह्मांडके रूपमें एकवद्भावापन्न मानना पड़ेगा! भागवतपुराण इस विषयमें ऐसा अभिप्राय प्रकट करता है :

“विकारैः सहितो युक्तैः विशेषादिभिः आवृतः
आण्डकोशो बहिः अयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः दशोत्तराधिकैः यत्र
प्रविष्टः परमाणुवत् लक्ष्यते अन्तर्गतः च अन्ये कोटिशो हि
अण्डराशय तद् आहुः अक्षरं ब्रह्म ब्रह्म सर्वकारणकारणं विष्णोः
धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः”.

(भाग.पुरा.३।११।३७-४१).

इस वचनके आधारपर एक ब्रह्मांड होनेकी कमसे कम भागवतपुराणको तो अभिप्रेत नहीं लगती. अतः इन अनेक ब्रह्मांडोंका एक ही किसी व्याख्याके आधार ऋजुतम स्वरूप स्वीकार लेना बहुविध अनेकताका अनादर लगता है. अतएव महाप्रभु श्रीवल्लभ भागवतप्रतिपाद्य परमतत्त्वको ‘कोटिब्रह्मांडविग्रहः’ (पुरु.सह.ना.४।५०) कहते हैं.

निष्कर्षरूपेण ब्रह्मांडोत्पत्तिके बारेमें जो तीन : ^१आदिमान्तिमसर्गादिवाद ^२सर्गनैरन्तर्यवाद ^३अ-सर्गवाद की प्रक्रिया या थियरी श्वरवादी या अनीश्वरवादी धर्म-दर्शनों द्वारा प्रस्तावित की गयी हैं वे किसी एक ब्रह्मांडके हेतु सच्ची हों तब भी अथवा तो एक ही ब्रह्मांडको कोई विभिन्न दृष्टिकोणोंके अनुसार निरखना या परखना चाहता हो तो तब भी क्यों संभव नहीं? अनीश्वरवादी धर्मोंने जीवोंके कर्मवशात् अथवा स्वयं ब्रह्मांडघटक द्रव्योंके उत्पाद-ध्रौव्य-व्यय-शील होनेके कारण अथवा तो प्रतीत्यसमुत्पादवादमूलक संघातवादका सहारा ले कर सर्गनैरन्तर्यवाद ब्रह्मांडोत्पत्तिके बारेमें सृष्टिनिर्माताकी अनिवार्यता न रह जाय ऐसे प्रयोजनवश प्रस्तुत किया है. पर जैसा कि हम देख चुके कि “तदा संहत्य च

अन्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः सदसत्त्वम् उपादाय च उभयं ससृजुः...
वर्षपूगसहस्रान्ते तद् अण्डं... कालकर्मस्वभावस्थो जीवो अजीवम् अजीवयत्.
सएव पुरुषः तस्माद् अण्डं निर्भिद्य निर्गतः” (भाग.पुरा.२।५।३३-३५) इस वचनमें स्वयं भागवतपुराण सृष्टिके उपादानभूत द्रव्योंके अन्योन्यसंघातकी प्रक्रिया भी स्वीकारता तो है ही, ब्रह्मकी उपादानता और भगवान्की जगत्कर्तृता के साथ-साथ ही. अतः ब्रह्मवादके अन्तर्गत प्रतीत्यसमुत्पादको भी सर्वथा अप्रसक्त तो माना नहीं जा सकता.

उसी तरह अ-सर्गवादकी प्रक्रिया भी स्वयंसे भिन्न कार्यको उत्पन्न नहीं किया गया एतावता भिन्न कार्यरूप ब्रह्मांडके सृजनको मिथ्या भ्रम यदि माननेमें आता हो तो वह भी, श्रौत ब्रह्मवादके आधारपर मान्य किया जा सकता है! अतएव भागवतपुराणका एक वचन इस प्रसंगमें आवश्यकतया अनुसन्धेय है :

“आसीज् ज्ञानम् अथोहि अर्थः एकमेव अविकल्पितं...
तद् मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितं वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं
द्विधा समभवद् बृहत्. तयोः एकतरोहि अर्थः प्रकृतिः सा
उभयात्मिका ज्ञानन्तु अन्यतमो भावः पुरुषः सो अभिधीयते.
तमो रजो सत्त्वम् इति प्रकृतेः अभवन् गुणाः”.

(भाग.पुरा.११।२४।२-५).

इस वचनमें यह देखा जा सकता है कि भागवतपुराणके अनुसार ज्ञान और ज्ञेय सृष्टिके प्राकट्यसे दो पदार्थ न हो कर एक अविकल्पित अद्वितीय पदार्थ थे. ऐसी स्थितिमें कोई एकमेवाद्वितीय तत्त्व ही ज्ञान-ज्ञेयोंके द्विविध विकल्पात्मना विभक्त हुवा और बादमें ज्ञेयतत्त्व त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके रूपमें प्रकट हुवा और ज्ञानतत्त्व पुरुषात्मना प्रकट हुवा. आधुनिकविज्ञानाश्रित चिन्तनमें बट्रेण्ड रसेल् ऐसा ही कुछ न्यूट्रल मोनीज़म्

प्रस्तावित करना चाहते थे. एतावता दृश्य या ज्ञेय जगत्को अपारमार्थिक मान कर ज्ञानाद्वितीयतावादको भागवताभिप्रेत माना नहीं जा सकता क्योंकि इस सृष्टिप्राक्कालिक ज्ञान-ज्ञेयकी अविकल्परूपताका स्वरूप भागवतके द्वितीय स्कन्धमें :

“तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि यन्मायया दुर्जयया
मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुं, विलज्जमानया यस्य स्थातुम् ईक्षापथे
अमुया... द्रव्यं कर्म च कालः च स्वभावो जीवएव च वासुदेवात्
परो ब्रह्मन् न च अन्यो अर्थो अस्ति तत्त्वतः... तस्यापि द्रष्टुः
ईशस्य कूटस्थस्य अखिलात्मनः सृज्यं सृजामि सृष्टो अहम्
ईक्षयैव अभिचोदितः. सत्त्वं रजः तमः इति निर्गुणस्य गुणाः
त्रय स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः”.

(भाग.पुरा.२।५।११-१८).

इस वचनकी एकादशस्कन्धीय वचनके साथ एकवाक्यता साधनेपर जिस मायाके कारण उस एकमेवाद्वितीय तत्त्वका ज्ञेय-ज्ञानके द्वैतघटित विकल्पके रूपमें विभाजन हुवा उसे स्वरूपतो निरस्त मान कर भी उन्हीं द्रव्य-कर्म-काल-स्वभाव-जीवका तत्त्वतः वासुदेवरूप होना प्रतिपादित किया गया है. अतः सृष्टिघटक इन दृश्यभूत तत्त्वोंके रूपोंमें कूटस्थ परमद्रष्टाका आत्मसंकल्पवशात् प्रकट होना प्रतिपादित किया गया है. न केवल इतना किन्तु इस प्रतिपादनके बाद आते विराजके निरूपणमें इसी तरह तृतीयस्कन्धके भी ८वें अध्यायमें भी “आयामतो विस्तरतः स्वमानदेहेन लोकत्रयसंग्रहेण” (भाग.पुरा.३।८।२५) वचनमें सृष्टिके प्राकट्यसे पूर्व विश्वरूप ब्रह्माजीको दर्साया गया. एतावता ज्ञानाद्वितीयतावादके अनुसार अपारमार्थिक होनेकी प्रमुख शर्त जो “नासीद् नास्ति न भविष्यति” है अर्थात् स्वप्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगिता रूपा मानी गयी है उसके विपरीत सृष्टिसे पूर्व भी अविकल्पतया सृज्यमान नाम-रूप-कर्मोंकी अव्यक्त सत्ता मान्य की होनेसे आत्मभिन्न सर्ग न हो कर स्वात्मक

सर्गके निर्माणमें उसे अतदात्मक मानना मायाकार्य लगता है नकि स्वरूपतः द्रष्टा और दृश्य के दोनों या दोनोंमें से एकतरकी अपारमार्थिकता स्वीकारी जा सकती है.

यह अ-सर्गवादके वेदान्तप्रस्थानमें समर्थ उद्घोषक भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यके, यद्यपि आधुनिक विद्वान् मान्य करते हों या न करते हों परम्परया मान्य ऐसे, ‘प्रबोधसुधाकर’ नामक ग्रन्थमें उपलब्ध होते -

“ब्रह्माण्डानि बहूनि पंकजभवान् प्रत्यण्डम् अत्यद्भुतान्
गोपान् वत्सयुतान् अदर्शयद् अजं विष्णून् अशेषान् च यः शम्भुः
यच्चरणोदकं स्वशिरसा धत्ते स मूर्तित्रयात् कृष्णो वै पृथग्
अस्ति कोऽपि अविकृतः सच्चिन्मयो निलिमा”.

(प्रबो.सुधा.आनु.प्रक.२४२).

इस वचनद्वारा भी यही तथ्य समर्थित होता है. अतः असर्गवाद भी ब्रह्मवादके अन्तर्गत ऐकान्तिकतया अस्वीकार्य नहीं होता परन्तु ब्रह्मको पारमार्थिक और माया-अविद्याको अपारमार्थिक माननेपर औपनिषदिक अभिप्रायके सन्दर्भमें अंशतो अमान्य करना पड़ता है. फिरभी, जैसाकि स्टीफेन् हॉकिंग् कहते हैं कि ऑब्ज़र्वर् और ऑब्ज़र्व्ड दोनों ही ब्रह्मांडके अंश हैं दोनोंका वास्तविक अस्तित्व है और जो दोनोंके बीच प्रभेद दिखलायी देता है उसका कोई सार्थक महत्त्व नहीं है (द्रष्ट. : वहीं पृ.४३) तदनुसार द्रष्टा-दृश्य या ज्ञान-ज्ञेय के बीच ऐकान्तिक द्वैतकी भ्रान्तिसिद्ध धारणाके सन्दर्भमें असर्गवाद अमान्य किया जाना आवश्यक नहीं है. क्योंकि उपनिषद् तो बहुत पहले ही कह चुके हैं कि “कथम् असतः सद् जायेत ? इति सत्त्वेव इदम् अग्रे आसीद् एकमेव अद्वितीयं तद् ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेय इति” (छान्दो.उप.६।२।२-३) यहां सुस्पष्ट शब्दोंमें न केवल वर्तमानमें प्रत्युत सृष्टिसे पूर्व भी सत्ता कण्ठतः घोषित की गयी है.

आदिमान्तिमसर्गवाद भी किसी एक ब्रह्मांडके सन्दर्भमें शक्य मान लेनेमें आपत्तिजनक कोई बात लगती नहीं है।

इसी तरह आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानके द्वारा उत्प्रेक्षित जो चार थियरी प्रस्तुत की गयी हैं, नामशः : ^१द बिगबैंग् थियरी ^२द ऑस्सिलेटिंग् युनिवर्स थियरी ^३द स्टडी स्टेट् थियरी अथवा तो कन्टीन्यूअस् एक्स्पांडिंग् युनिवर्स थियरी ^४द स्ट्रिंग् थियरी। इनमें अधिकांश चिन्तक ^१सर्गनैरन्तर्यवाद और उसकी सहधर्मी ^२द स्टडी स्टेट् थियरी अथवा तो कन्टीन्यूअस् एक्स्पांडिंग् युनिवर्स थियरी को अब अमान्य कर चुके हैं।

कथमपि इन थियरीओंके कारण श्रौत-औपनिषदिक ब्रह्मवादके सिद्धान्तका निराकरण हो जाता हो ऐसा मान लेनेकी कोई अपरिहार्य धारणा प्रस्तुत हो नहीं पायी है। क्योंकि किसी एक एक ब्रह्मांडका सृजन इनमेंसे किसी एक थियरीके अनुसार हुवा हो उसमें अनन्तकोटि ब्रह्मांडके उपादानभूत ब्रह्मके निरस्त होनेका प्रश्न कहाँ उठता है?

भागवतपुराणके पूर्वमें उद्धृत वचनमें कहा ही गया है कि “द्रव्यं कर्म च कालः च स्वभावो जीवएव च वासुदेवात् परो, ब्रह्मन् !, न च अन्यो अर्थो अस्ति तत्त्वतः” (भाग.पुरा.२।५।१४) अब ये पांचों तत्त्व परस्पर भिन्न होनेपर भी वासुदेवसे भिन्न न हों तो उस वासुदेवको साक्षाद् ब्रह्मांडका उपादान मानो या इन पांचोंके संघात या अन्यतम को उपादान मानों ब्रह्मांडकी उत्पत्तिमें कारणभूत पदार्थको किसी विशेष गुणधर्मके रूपमें देखने कहने या प्रस्तुत करनेकी शैलीमें ही अन्तर पड़ रहा है कार्यरूप ब्रह्मांड और उसके अंगीकृत कारणतत्त्व के स्वरूप में नहीं।

किसी भी तरह विचार करनेपर आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानद्वारा प्रस्तावित काल (Time), कर्म (Motion), स्वभाव (Energy), प्रकृति=द्रव्य

(Matter), और पुरुष (The inherent awareness of the direction of evolution of matter or inherent design) इन पांचों पदार्थोंमें से आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानको अमान्य हो तो वह पुरुषरूप चेतना पदार्थ ही है। भागवतपुराण इस विषयमें एक अतीव मननीय विधान करता है “प्रकृतिः पुरुषः च उभौ यद्यपि आत्मविलक्षणौ अन्योन्यापाश्रयात्, कृष्ण !, दृश्यते न भिदा तयोः, प्रकृतौ लक्ष्यते हि आत्मा प्रकृतिः च तथा आत्मनि” (भाग.पुरा.११।२२।२६). अतः दोनों तत्त्व पृथक् हों तब भी एकवद् भासित होते हैं। यह हकीकत तो भागवतपुराणको सर्वथा मान्य ही है। परन्तु अचेतन द्रव्योके विकासकी शृंखलामें किसी भी प्रकारकी, एकान्तिकतया नियत अथवा अनैकान्तिकतया अनेक सम्भाव्यताओंमें एक सम्भाव्यताके रूपमें ही योजनाबद्धता हो ही नहीं सकती ऐसा तो आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञान भी कह नहीं पायेगा। अतः अन्तमें झगड़ा तब केवल नामोंका और उन-उन धारणाओंके उत्सतया शास्त्रश्रद्धाको आधार मानना या ब्रह्मांड और उसके घटक द्रव्योंके वैज्ञानिक परीक्षण-निरीक्षण के हेतु किये जाते एक ऊहके रूपमें मान्य रखना इतना ही तो रह जाता है! अतः इस विषयमें थोड़ी प्रतीक्षा तो भागवतदृष्टिको भी करनी ही पड़ेगी कि कब आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानको उसे अभिमत पुरुषकी अनिवार्यता अनुभूत होगी! किसी भी परिस्थितिमें पांच न मान कर चार तत्त्व भी स्वीकार लें पर उन तत्त्वोंका परस्परसापेक्ष होना उनकी किसी न किसी प्रकारकी एकताकी ओर इशारा करता है।

सकल ब्रह्मांडोंके विषयमें जो हठात् ऐसा स्वीकार किया जाता न हो तो अब्राह्मिकी विश्वसृजनप्रक्रिया, नामशः, आदिमान्तिमसर्गवाद भी किसी एक ब्रह्मांडके विशेष उदाहरणमें सच्ची प्रक्रियाके रूपमें मान्य की जा सकती है। मूलमें श्रौतदृष्टिसे निहारनेपर ^१कॉस्मिक एगमें महाविस्फोट प्रक्रिया ^२निरन्तर उत्पत्ति-विनाशशाली स्पन्दनकी प्रक्रिया ^३सृष्टिघटक तन्तुओंमें उत्पत्ति-विनाशके रूपमें अवभासित होते स्पन्दनकी प्रक्रिया परस्पर पर्याप्त प्रत्यासन्न धारणायें हैं। सर्वथा असर्गवाद और सर्गनैरन्तर्यवाद कुछ दूरतर

अवस्थित अवधारणायें हैं. फिरभी सर्गनैरन्तर्यवादके सन्दर्भमें यह एक वचन भागवतपुराणका उल्लेखनीय लगता है “नित्यदा सर्वभूतां ब्रह्मादीनां... उत्पत्तिप्रलयौ एके सूक्ष्मज्ञाः सम्प्रचक्षते. कालस्रोतोजवेन आशु ह्रियमाणस्य नित्यदा, परिणामिनाम् अवस्थाः ताः जन्मप्रलयहेतवः” (भाग.पुरा.१२।४।३५-३६) अतः सर्गनैरन्तर्यवाद सृष्टिविधाताके अस्तित्वको नकारनेको प्रस्तुत हुवा सिद्धान्त होनेपर भी श्रौत ब्रह्मवादके ऑपन् एअर् थियेटर्में अपनी सीट् रिज़र्व् करा कर लीला निरखना चाहता हो तो उसे बहिष्कृत करनेकी कोई आवश्यकता होनी तो नहीं चाहिये!

आप्यायन्तु मम अंगानि वाक् प्राणः चक्षुः श्रोत्रम्
अथो बलम् इन्द्रियाणि सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदम्
मा अहं ब्रह्म निराकुर्यां मा-मा ब्रह्म निराकरोद् !
अनिराकरणं मे अस्तु !^१ तद् आत्मनि निरते
ये उपनिषत्सु धर्माः ते मयि सन्तु ! ते मयि सन्तु !!